यूटोपिया

–वन्दना राग

नज्जो के अब्बा नहीं थे।

गुजर चुके थे उसके पैदा होने के दो ही साल बाद। नज्जो को याद नहीं, अब्बा दिखते कैसे थे? एक धुँधलाई सफेद काली तस्वीर देखी थी अम्मी के गुलाबी फूल हरे पत्ते वाले टिन के ढक्कन वाले बक्से में कभी। खेलते-खेलते पहुँच गई थी वो, घर के अंतिम कोने की आखिरी काली दमघोंटू कोठरी में। कोठरी एकदम काली-काली थी। वहाँ कुछ नजर नहीं आता था, सिर्फ टिन के बक्से का गुलाबी फूलों वाला ढक्कन अबूझ आकर्षण से नज्जो को अपनी ओर खींचने लगा। नज्जो गिरती पड़ती बक्से तक पहुँची और बक्से पर चढ़ गई। वो उस पर चढ़कर अपनी फ्राक दोनों हाथों में भींच दाँए-बाँए खूब इठलाई। फिर उसे लगा उसके कूदने पर भी बक्सा झन-झन कर ही नहीं रहा है...क्यों? उसने जमीन पर बक्से के सामने पालथी मारी और बैठ गई। उसने बक्से के ढक्कन से जोर आजमाइश शुरू कर दी। बक्से का कुंदा उसके हाथ में आ गया और उसकी आँखें चमक उठीं। उसने जोर लगाया और बक्सा खुल गया। वाह! उसमें तो मजेदार चीजें थीं। तरह-तरह की। चमकदार और लुभावनी। उसे एक चमचमाता मोतिया बटुआ दिखा, एक लौंग का पंखा जिसमें नीले लाल शनील की झालर लगी थी और ढेर सारे चाँदी के बर्तन जो कुछ मटियाये सफेद दिख रहे थे, और इन सब ठस्समठस चीजों के नीचे, खूब नीचे दबा था एक कालापन लिए लाल-लाल गरारा सूट। नज्जो की आँखों की रोशनी और चम-चम कर उठी। ''अल्लाह शादी का जोड़ा...।'' ऐसे कई जोड़े उसने देखे थे, उन बेगिनती शादियों में जिसमें वह अपनी अम्मी की उँगली पकड़, उनकी परछाई बन जाया करती थी। उन शादियों में उसकी

इस अदा पर खूब ठिठोली भी हुआ करती थी ''अए नज्जो, छोड़ अम्मी की उँगली...।'' क्या अपनी शादी में अम्मी को लेकर जाएगी? दहेज बनाकर...?'' नज्जो की आँखें डबडबा जाती थीं। उसके अंदर की जिद, दीदे फाड़ फब्ती कसने वालों को जवाब देती ''मैं अम्मी को छोड़ कहीं नहीं जाऊँगी...?'' ''अच्छा...?'' औरतें नजरें मटकाती, हाथ घुमाते नचाते कहतीं, और 'शादी... न करेगी?' 'नहीं!' वो जिद को गुस्से में ढाल चीखती 'कभी नहीं करूंगी, शादी।' औरतें फाहश हँसी हँसती, अम्मी तुरंत उसकी बलैया लेने लगतीं, 'अल्लाह करम करे, ऐसा नहीं बोलते...।' लेकिन बचपने वाली जिद नज्जो के व्यक्तित्व का दूसरा हिस्सा बन हरदम ही उसके दिल में ठोस ढंग से प्रतिध्वनित होती रही, ये घर के लोगों को बहुत बाद में समझ आता। नज्जो तो सब जानती थी। उसी का खेला था सब, उसी का किया कराया।

लाल जोड़ा निकाल नज्जो उसे बेतरतीबी से अलटने पलटने लगी। एक पुलक के साथ। उसे शादी करने का ख्याल चिढ़ाता था लेकिन शादी का जोड़ा उसके मन में न समझ में आने वाली एक खुशी का एहसास फूँक देता था। नज्जों का जी होता, लाल जोड़ा पहन खूब नाचे इतराए, मगर अम्मी का साथ न छूटे कभी। उसका उसकी अम्मी से लगाव इस कदर बेपनाह था कि उसके भाई चिन्ता करते 'अम्मी, माना एकलौती है, माना सबसे छोटी है, माना अब्बू नहीं अब, लेकिन इसका आपसे ऐसा लगाव' ठीक नहीं, इतनी ढील देती हो, जिद्दी हो रही है।' अम्मी रसोई में सालन पकाते हुए ठिठक जातीं, रुक कर अपने तीन जवान लड़कों को देखतीं और उनका जी जुड़ा जाता। अपने खाविंद के जाने का गम आधा हो जाता। लड़के उनके तीनों समझदार थे। उनके प्यार के पप्पू, गुड्डू और राजा। पप्पू को तो उसके अब्बू के इंतकाल के बाद उन्हीं के आफिस वालों ने, वहीं ड्राइवर रख लिया था, जहाँ वे खुद थे। पप्पू ने अपनी जान-पहचान की बदौलत गुड्डू और राजा को भी प्रायवेट गाड़ियों पर लगवा दिया था। मिला जुला कर तीनों दस बारह हजार की आमदनी हर महीने पैदा कर लेते थे। अभी सब ठीक था। अम्मी जानती थीं, दुल्हनों के आने पर सारे मामले दुबारा जमाने पड़ेंगे। नज्जो की शादी भी चार-पाँच साल में कहीं ठहरानी होगी। उनके जिगर का टुकड़ा थी वो, लेकिन जीवन भर अपनी छाती पर थोड़े बिछा कर रख सकती थीं वे उसे। बेपनाह लाड़ था उसका इस घर में। हो सकता है, इससे थोड़ी जिद्दी हो गई थी वो? लेकिन अम्मी जानती थीं, लड़कियाँ बारह तेरह साल की हुई नहीं कि खुद ही सँभल जाती हैं। अक्ल न जाने कैसे उनकी सारी अदाओं, आदतों को चीर, घुस जाती है, उनके जेहन में। फिर दुपट्टा ठीक से लपेटने को कहना भी नहीं होता है उन्हें। थोड़ा सा ढलका

और लड़कियाँ खुद ही चौकस अपनी चीजों को सँभालने लगती हैं। अम्मी भी उसी रास्ते बड़ी हुई थीं। उसी तरह दुपट्टा सँभालने से लेकर नमाज की पाबन्दी और सालन पकाने का हुनर अख्तियार किया था उन्होंने। अम्मी अपने जवान बेटों की चिंता का मर्म समझते हुए भी उसे ज्यादा तवज्जो नहीं देती थी। क्या करना है? अकुवा के जंगली झाड़ों की तरह बेसँभाल ढंग से बढ़ना है लड़कियों को, वो बढ़ेंगी ही। कुछ साल और। फिर कहाँ चहकेगी नज्जो उनके इस घर में, उसे तो फैलना होगा किसी दूसरे की ओट में। पूरी की पूरी ओट में। अम्मी के ऊपर सोच-सोच कर घबराहट तारी हो जाती। उनके मियाँ ने तो पर्दा नहीं कराया उनसे, बुर्का बुर्का कुछ नहीं, बस चादर से ढँका उन्होंने अपने आपको, मगर क्या जाने नज्जो की ससुराल वाले कैसे हों?

अम्मी बेटों को आँखों ही आँखों में मुस्कुरा कर राहत की बदली से भिगो देतीं। 'मैं हूँ न...' की तर्ज पर। लड़के अम्मी का मान रखते थे। मेहनतकश कामकाजी थे, अनावश्यक हील हुज्जत, से दूर रहते थे।

अम्मी को सालन पकाते-पकाते अपनी बहुत देर से गुम बिटिया की याद आई। गुम बिटियाओं से घर हमेशा ही हौलनाक और गमगीन हो जाया करते हैं, अम्मी जानती थीं। उनके घर की फुदकती चिड़िया उन्हें हमेशा जिंदगी के खूबसूरत मायने बताती थी। उस आवाज के बिना उनको सूनापन घेरने लगा। उन्होंने अपने चारों ओर यूँ ही बुन गए, मकड़जालों को हटा हटा कर साफ किया और चिल्लाई 'नज्जो...! नज्जोऽऽ!' नज्जो!'

नज्जो अभी लाल गरारा सूट ठीक से देख भी न पाई होगी कि लगा कि अम्मी की आवाज कहीं दूर किसी पहाड़ की तराई को पुकारती, गूँजती सी उस तक पहुँची। नज्जो ने न पहाड़ देखे थे न तराई। उसने गाँव और खेत भी ठीक से नहीं देखे थे। उसकी आँखों के दायरे में तो इस शहर की पूरी परिधि भी नहीं बँध पाई थी। उसके लिए राजीव नगर मुहल्ले से थोड़ी दूर बना उसका ये आधा पक्का आधा कच्चा घर ही उसकी पूरी दुनिया थी। कभी-कभी बस वह शहर की सैर को निकलती थी, जब भाइयों की ड्यूटी खत्म हो जाती थी और तब भी गाड़ी उनके हाथों में रहती थी। भाई उसे लाड़ से शहर घुमा लाते थे, वर्ना तो अम्मी का हाथ पकड़ वह मुहल्ले और रिश्तेदारों में जाने तक को ही अपना जहान नापना मानती थी।

अम्मी की आवाज का टूट-टूट कर उस पर आना उसे न जाने क्यों दहला गया। उसने चिहुँक कर गरारा हाथ से गिरा दिया। गरारे के हाथ से छूटते ही एक कड़ाक की आवाज हुई और आवाज के साथ अम्मी के तेजी से नजदीक आते कदमों की थापों की

जादुई जुगलबंदी हुई और वे नज्जो की दुनिया में अचानक ही कई जानकारियों के साथ प्रवेश कर गए। 'अरे नज्जोऽऽ, यहाँ अँधेरे में क्या कर रही?' 'अरे क्या तोड़ा?' 'लिल्लाह ये लड़की ये लड़की न जाने क्या गुल खिलाएगी?' 'अरे कहाँ मर गई?' नज्जो ने पहली बार अपनी जिंदगी में अम्मी को बेगानी अम्मियों की तरह बोलते देखा। पहली बार अम्मी के हाथों के नर्म खरगोशपने के बदले कच्ची कैरी के चटकपने का स्वाद लिया और अम्मी की उस टूटी हुई जमींदोज चीज के उठाने पर जाना, अम्मी की बरसों से छुपाई उस इकलौती चीज का उसने नुकसान कर दिया था। उसी दिन नज्जो ने अपने जीवन का पहला दुख भरा गीत अपने दिल में बजते हुए सुना। दुख दिल में इतने निचोड़ पैदा कर आँख के रास्ते बहता है यह भी नज्जो ने जाना उस दिन। इतने सारे दुख के आयामों के उद्घाटन के बावजूद, नज्जो ने समझा 'अम्मी का गुस्सा लाजमी था उस दिन।' उसने अंधेरी कोठरी से घिसटते हुए चुँधियाती रोशनी में पटके जाते हुए जाना कि अँधेरे के बाद यदि आँखें आराम से, के बजाए हड़बड़ी में खोल दी जाएँ तो कितनी तकलीफ होती है। लगता है आँखों में कीलें ठुक रही हैं। उन्हीं सब दुख जानकारियों के बीच, बताया था अम्मी ने बार-बार दिखा-दिखा कर कैसे उसने अपने अब्बू की इकलौती तस्वीर का फ्रेम और काँच अपने खेल की खातिर पटक कर तोड़ दिया था। उसी दिन तो देखा था उसने, अब्बू उसके कितने काले थे। लंबी भूरी दाढ़ी वाले काले-काले। उसने अपने नए कमाए दुखों के बीच एक हल्की फाँक सी खुशी महसूस की थी, 'वो अब्बू जैसी नहीं, वो तो अपनी अम्मी जैसी गोरी-गोरी सुन्दर है।' उसने रोते-रोते लाड़ से अम्मी के हाथों से अब्बू की तस्वीर ले ली और अम्मी के हाथ खाली कर दिए। अब अम्मी की गोदी थी और अम्मी के हाथ जिसे उसने अपने चारों ओर लिपटवा लिया और उन्हें बीते हुए कल से आज बना फिर से बामकसद बना दिया।

'अरे पगली..!' अम्मी की आवाज थी या सिसकी का शुबहा।

'एक ही तो फोटो थी तेरे अब्बू की, अब उसमें दुबारा फ्रेम जड़वाना पड़ेगा।'

'अम्मी' उसने सब कुछ परे धकेलते हुए उम्र और उसके कौतूहल की ईमानदारी से पूछा था, 'तुमने अब्बू की तस्वीर बक्से में क्यों बंद कर रक्खी थी, यहाँ क्यों नहीं टाँगी दीवार पर, इन तस्वीरों के साथ?' उसने 'मक्का मदीना' की काली फाइबर पर उकेरी उजली तस्वीरों को दिखाते हुए पूछा था। यहाँ तो इनका कुछ नहीं बिगड़ता और हम रोज, अब्बू को देखते उनके यहाँ नहीं होने पर भी।

'नहीं..!' अम्मी की उदासी घनी थी। नज्जो नहीं देख पाई उस पार जाके, बहुत

छोटी थी तब।

जिद कर कुछ उदासी की परतों को फलाँगते हुए नज्जो ने पूछा, ''अम्मी क्यों नहीं?'' अम्मी अचकच हो गईं, उन्हें लगा क्या समझाएँ अभी इसे? उनके अंदर का यकीं पक्का था ही, सीख लेगी लड़की जात सब जीवन के कायदे पाबंदियाँ, रोजा, नमाज, सब जल्द ही।

उन्होंने धीरे से नज्जो को गोद से उतारा उसकी फ्राक खींच कर उसे घुटनों से नीचे करने का असफल प्रयास किया और समझ गई, फ्राक अब नहीं खिंच पाएगी। लड़की बड़ी हो गई है, जल्द सलवार कमीज पहनाने पड़ेंगे। टाँगें तो ऐसी लंबी और चिकनी होती जा रही हैं उसकी। रंग भी माशा अल्लाह खिलता गंदुमी था और मोटी काली आँखें थीं। बाल भी खूब लंबे और काले थे। लंबी चोटी पीठ पर फुदकती रहती थी। आँखों का कजरारापन साँप बन लोगों को डसता रहता था। तभी, उनकी देवरानी ने पहले ही कह दिया था 'बा जी नज्जो हमारे यहाँ ही आएगी। लड़के तो इस खानदान के लुटेपिटे दिखे हैं, इस लड़की से ही रौनक होगी। नस्लें सुधरेंगी।' अम्मी अपनी देवरानी के चुहल के भीतर छिपी गंभीरता से बहुत पहले से परिचित थीं, उन्हें सोच-सोच, कँपकँपी छूटती थी कि उनकी लाड़ो की, ऐसी गंभीर सास के साथ कहीं साँस तो न बंद हो जाएगी? ऊपर से हाँ बोलते हुए वे हमेशा ही ना ना मनाती थीं। एक दो बार उन्होंने अपने तीनों जवान लड़कों को कहा भी था, 'नज्जो का रिश्ता परिवार से बाहर ही ठीक रहेगा।' लड़कों ने ऐसी बात पर तबज्जो देना बंद कर दिया था। वे जानते थे, अपनी नज्जो की बाबत सारी बातें अम्मी और सिर्फ अम्मी तय करेंगी, फिर बोल चाहे वे कुछ भी लें।

अगले दिन अम्मी नज्जो को घर में खेलता छोड़भरी ठेलमठेल गर्मी की जलनखोर नासमझी को अपने मकसद की जरूरत से बेपरवाह उड़ाते हुए, 'अग्रवाल एण्ड संस' की दुकान पर पहुँचीं। वहीं सेठ की दुकान पर उनका खाता चलता था। सेठ अम्मी जैसे खातेदारों को देख रंग जाता था–खुशी से!धंधा उसका इस छोटे शहर में इन्हीं लोगों की मार्फत जिंदा रहता था, जो तत्काल भुगतान न करते हुए, लगातार उधारी पर रहते थे। इससे ग्राहकों की संख्या कभी घटती नहीं थी और भले ही तुरंत का नुकसान उसकी छाती को धोबी पछाड़ सा कूटता था, फिर भी वह आगामी संभावनाओं की वर्षा से बेफिक्र हो जाया करता था। 'जाएँगे कहाँ ये सारे?' आज नहीं तो कल उसका उधार चुकता करेंगे ही, वर्ना पुलिस और पार्टी के सेवक सब उसकी मदद को तैयार रहते थे। दोनों जगह अच्छा टैक्स भरता था वो।' बड़े दुकानदारों में गिनती थी उसकी।

'बोल्लो क्या देखना है?' उसने आवाज में चाशनी घोली। अम्मी को सेठ ठीक नहीं लगते हुए भी ठीक लगता था। उनकी कई एक उधारियों के वक्त भी सेठ की चाशनी कम मीठी नहीं होती थी। एक तो उधार की फिक्र उसपे यदि दुकानदार बदतमीजी से बात करे तो अपने मुफलिस होने का सच उजागर हो जाने को धमकाता था और चूँकि अम्मी फिलहाल मुगालतों को पोसना चाहती थीं, इसलिए मँहगी लेकिन मीठी चाशनी से ही वो बार-बार वास्ता बनाए रखना चाहती थीं। उन्होंने एक छोटे लाल फूलों वाली बिस्कुटी रंग की थान पर हाथ रख दिया, 'भइया इसमें से तीन मीटर और इसी फूल से मैचिंग लाल जार्जेट का दुपट्टा।' 'दुपट्टा कितना?' दुकान का नौकर चिल्लाकर पूछने लगा। 'दुपट्टा डेढ़ मीटर कर दो।' सेठ अम्मी की आँखों में आँखें डाल चाशनी गाढ़ी कर बोला ''अच्छा बिटिया रानी के लिए ले रही हो? तो ये काटन क्यों? एक बनारसी कपड़ा आया है, उसमें से ले जाओ अभी तो शादियाँ भी आ रही हैं, जँचेगी लड़की इसमें।' ''ऐ...लड़के, दिखा इनको नया आया बनारसी कपड़ा।' सेठ की चाशनी झाड़ू की फटकार में बदल गई थी। अम्मी को बुरा नहीं लगा। अम्मी का रुतबा नौकर से ऊपर रखा था सेठ ने। बनारसी कपड़े के थान पटकने के अंदाज में नौकर की छिपी नाफरमानी ताड़ ली अम्मी ने 'अरे भइया ठीक से दिखा-।' उन्हें सेठ की चाशनी का दम था। नौकर दोबारा प्रहारों के बीच पैरों के घुटने मोड़ बैठ गया, विशुद्ध व्यवसायिक अंदाज में। उसे भावनाओं से परहेज करने का सबक बचपन से बालघुट्टी में घोल-घोल पिलाया गया था। 'ये लो...कौन सा..देखो...!' अम्मी की आँखें फट गईं। 'क्या सुन्दर चमकीले रंगों के कपड़े थे सारे!' सब पर जरी का ताना बाना था। कपड़े के अंदर से सुनहरे फूल उग आए हों जैसे। उन्हें पीले रंग वाला थान सबसे उम्दा लग रहा था। उन्हें लग रहा था इस हल्द पीले पर उगे ये सुनहरे फूल उनकी गंदूमी रंग की बिटिया पर जब खिलने लगेंगे तो कैसे फुलवारी सी महक जाएगी। उनकी हसरत पूछ बैठी 'ये तो महँगा होगा?' नहीं... बनारसी है लेकिन उसके आधे दामों पर।' अम्मी को दिलासे से धीर बँधया 'बनारस वाले अब हम जैसों के लिए भी कपड़ा तैयार करने लगे!' उन्होंने पीले बनारसी थाने से भी तीन मीटर कपड़ा मोलवाया और मुट्ठी में भींचे एक पुराने मुसे कुसे बटुए से दो सौ रुपए निकाल सेठ की ओर बढ़ा दिए 'दुपट्टा भी मैच करवा देना और अगले महीने के खाते में पैसा लिख लेना।' सेठ ने पैसों पर झपट्टा मारा, बाकी के आगे लिखा-3 रुपए और अपना काम खत्म करने के बाद की मुद्रा में अपना मुँह टेबल की दराजों में गड़ा दिया।

अम्मी भी नीली पन्नी में सिमटे अपने सामान को ले दुकान से बाहर निकलीं।

उनके मन में आया कॉटन का सूट वे खुद सिल लें, मगर बनारसी वाला शकीला दर्जन को दें। क्या बढ़िया लेडीज सूट सिलती थी। अभी हाल में अम्मी का एक सिला था उसने। अपने सूट को याद कर अम्मी को अजीब सी शर्मिंदगी तबाह करने लगी। उन्होंने एक उल्टी साँस खींची। इतने सालों से साड़ी के अलावा कुछ नहीं पहना था, उन्होंने, लेकिन इधर कुछ अर्सा पहले उनके बड़े बेटे पप्पू ने नमाज के बाद मस्जिद में होने वाली बातचीत का हवाला देते हुए कहा था, 'अम्मी मौलवी साहब कह रहे थे, औरतों को नमाज पढ़ते वक्त सलवार कमीज पहनना होगा। साड़ी में नंगापन होता है।' अम्मी उम्र के इस पड़ाव पर बेटे के मुँह से ऐसी बात सुन हिल गई थीं। पचपन की पहुँचती उम्र में साड़ी के बाहर उसका पेट बालिश्त भर नजर भी आ जाता, तो क्या नजर आता वहाँ? झाँकती, छुपती कुछ सफेद फटी लकीरें और झूलती ढीली चमड़ी? वो क्या किसी की भी आँखों से देखने पर नंगई होती? वो तो इतने बच्चों को पेट में रखने का नतीजा था बस। मुहल्ले की ज्यादातर औरतों ने लेकिन मौलवी साहब की बात का लिहाज रखते हुए अब नमाज पढ़ते वक्त सलवार कुर्ते पहनने शुरू कर दिए थे। अम्मी के अंदर कुछ खौफ सा अधकचरा बवाल उठता। कहीं बात न मानने की वजह से उन्हें मुहल्ला बदर न कर दिया जाए, या कुछ उल्टा-सुल्टा कह दिया जाए तो...? लिहाजा बहुत झिझकते हुए वो नमाज के वक्त अपना सूट पहन लिया करती थीं।

शकीला दर्जन खूब खुलकर हँसी कपड़ा देख 'क्यों नज्जो की अम्मा, लड़की के लिए रिश्ते आने लगे क्या?' 'नई...नई,' अम्मी ने मुस्कुरा कर शकीला के उत्साह का साथ दिया। 'अरे-तुम्हारी बिटिया तो चंदा है, कितने भी कपड़ों से ढक दोगी, फिर भी रोशनी खिलाएगी। उसे संभाल कर रखना होगा तुम्हें। मुहल्ले में लौंडों की फौज बढ़ती जा रही है। ये जो हिन्दुअन के लड़के हैं न, ये आजकल ज्यादा ही चढ़बढ़ गए हैं। वैसे भी जमाना खराब है, लड़की जात के लिए, क्या हिन्दू क्या मुसलमान?' ये सब सुन अम्मी अनजानी बदख्यालियों से भर गईं। 'अभी तो पाँचवी में है, आठवीं तक सगाई कर दूँगी उसकी।' उन्होंने तय किया और शकीला को कपड़ा कम पैसे में सिलने की धौंस दे घर चल पड़ी।

भारी गर्मी पड़ रही थी। अम्मी को लगा चलते-चलते कहीं पिघल न जाएँ वे। उन्होंने अपनी साड़ी का पल्ला सिर के ऊपर खींच कर सिर ढक लिया अपना और तेज कदमों से चल पड़ीं। उनकी चाल की वजह से उनकी हल्की नीले रंग की साड़ी भी फदर फदर हवा में शोर करते उड़ती फिरी। अम्मी को समझ में ही नहीं आया अब

मौलवी उस्मान अली उनके सामने पड़ गए। अम्मी को देख वे ठिठक गए और सलाम वालैकुम की रस्म अदायगी के बाद अम्मी को रोक कुछ-कुछ बतियाने लगे। अम्मी की नजरें चोर हो गईं। वे मौलवी उस्मान अली की आँखों से होते हुए अपने उघड़े पेट पर जाकर लुक गईं। उन्होंने वहीं लुके-लुके जानना चाहा कि पेट पर कुछ नंगई नाच रही है क्या? मौलवी साहब अपनी पैनी आवाज में पान थूक कह रहे थे 'जमाना बड़ा खराब है बीबी, लड़कों बच्चों को सँभालना होगा। ये टी.वी. सिनेमा की बदौलत सब कुछ...!' अब हम कितनी तकरीरें करें, जब घरवाले नहीं समझते तो बच्चों को क्या समझाया जाए? जवान लड़कों ने मस्जिदों में नमाज पढ़ने आना बंद ही कर दिया समझे। सिर्फ जुमे के दिन मस्जिद भरती अब तो। ठीक नहीं सब। मौलवी ने नाराज निराशा से अपनी लंबी भूरी दाढ़ी पर हाथ फेरा। अम्मी के सीने में क्या कुछ बराबर होने को मचलने लगा। उन्हें मौलवी उस्मान अली की बातों से पैदा हुई हलचल नागवार लग रही थी। उन्होंने 'जी... जी' ...कर मौलवी के पार जाना चाहा। ये ल्लौ...मौलवी उस्मान अली ने उनके लिए रास्ता बनाया और साथ हो लिए। वक्त की नाजाकत को सँभालते हुए अम्मी कह उठीं 'मेरे लड़के तो मौलवी साहब जब भी ड्यूटी से फुर्सत मिलती है नमाज की पाबन्दी निभाते हैं...कहीं हों।' 'तुम्हारे लड़कों की नहीं कह रहा मैँ, जमाने की कह रहा हूँ।' 'बीबी-पैसा!' रहस्य से आवाज धीमी की मौलवी ने, 'शहर के सारे सेठों का पैसा तो हिन्दुओं के त्यौहारों में फूँका जा रहा है। अब मस्जिद के पास ही देख लो 'नव दुर्गा समिति' बना कर बैठ गए हैं, ये तो सारी तंग करने वाली बातें हैं न। लौंडों की फौज है, वहीं गाना बजाना करेंगे, हल्ला मचाएँगे और हमारी नमाज में खलल डालेंगे।' 'जी, अच्छा' अम्मी ने टालने की गरज से एक टुकड़ा जवाब दे डाला। लेकिन मौलवी कहाँ मानने वाले थे-जारी रहे 'इस बार मुहल्ले का वो जवान छोकरा बन गया है, समिति का कर्ताधर्ता। आवारा कहीं का।' 'कौन?' अम्मी की भवों ने जिज्ञासा का लिबास ओढ़ तलबगारी की। 'अरे वही तुम्हारे मुहल्ले वाला। वही जिसका बाप अपने फारुख मियाँ के साथ वाली दुकान में फल लगाता था। कित्ता भला आदमी था उसका बाप। फारुख और उसकी कैसे घुटती थी। अब इसके लौंडे को देखो कुछ किया कराया नहीं, बस इसी करने में लगे हैं। फिजा खराब करते हैं ये बीबी...।'

अम्मी की चोर निगाहें अब उनके अपने मन के भीतर घुस गईं। जिस लड़के की बात मौलवी कर रहे थे उन्हें वो लड़का कुछ बरस पहले तक बड़ा प्यारा लगता था। नज्जो के अब्बा से उस लड़के के अब्बा के अच्छे ताल्लुकात थे। घर आना-जाना भी था।

गुजरे जमाने की बातें थीं सभी, अब कहाँ। अम्मी ने एक शर्मिंदा साँस को आजाद किया। लगता था उनके इस छोटे से कस्बाई शहर का पूरा समाज ही बदल गया था। बचपन में उस लड़के को कई एक बार पुचकारा था उन्होंने, कैसे गुलाबी होंठ थे उस लड़के के, एकदम लड़कियों जैसे नर्म। हाँ, अम्मी को उसका नाम पसंद नहीं था, इतना लंबा और जीभ घुमाऊँ नाम था। 'अच्युतानंद गोसाई'। उसके घर के बगल वाले खाली प्लाट में खेलता था वो, मुहल्ले के और बच्चों के साथ। अक्सर, टोली बना दुर्गा उत्सव का चंदा लेने आता था उनके यहाँ। बस यही कोई पिछले दो सालों से ये चंदा माँगने वालों का चंदा माँगने का सिलसिला, यों ही ठप हो गया था। हालाँकि अम्मी को चंदा माँगने वालों से परेशानी होती थी, लेकिन चंदा माँगने में अचानक आई तब्दीली बरसों से चले आए एक सिलसिले को कर्कश आवाज से तोड़ती थी। उसका तीखापन सुई सी पैनी टीस के साथ एक नए उग आए घाव से, फर्क की ओर इशारा करता था, जिसे अम्मी का जी आसानी से कुबूल करने को राजी नहीं होता था। उनके बचपन के जमाने के शहर से कितना बदल गया था, आज के जमाने का शहर! उनके जमाने से तो कहीं ज्यादा बदल रहे थे मुसलमान, पढ़ना लिखना, नौकरी सब में इजाफा हो गया था, लेकिन साथ ही साथ एक न समझ में आने वाली सख्ती भी मुसलमानों के अंदर ही अंदर पकती जा रही थी। उस पकने की तासीर का असर इधर-उधर हर जगह होने लगा था। मुसलमानों के भीतरपने से बाहर हिन्दुओं के भीतरपने में भी। अम्मी के घर उनके लड़के आके सारी बातें बताते थे, दुनिया जहान की। वे बड़ी पार्टियों को टूर पर ले जाते थे, कभी आगरा, दिल्ली, मैसूर। वहाँ की बातें, वहाँ की इमारतें लाल किले से ताज महल तक सब देखती थीं अम्मी लड़कों की बातों में, वे सियासत और नेताओं की नजदीकी बातें भी समझने लगी थीं, लड़कों, टीवी और अखबार के बदौलत। वे जानती कम थी, और समझती ज्यादा थीं। 'बच के रहना' उनकी जिंदगी का फलसफा बनता जा रहा था। जब अनजाने ही लोगों की नजरें बदलने लगें, पलटने लगें, अपने बरसों के रिश्तों की गर्मी घुल कर बह जाने से, तो शरीर को ढक, मन को बाँध, सिमट जाना होता था, अपने-अपने मैले दड़बों में, अपने समान नकूशों वाले ढेरों बकरों समान। डरते, लेकिन, एक साथ होने के नकली हौसलों से जीते जिलाते। न जाने दड़बों के बाहर कौन खड़ा हो झटके के गोश्त के इंतजाम में। मौलवी उस्मान अली की बातें नागवार होते हुए भी वक्त के सच्चे जरूरी घंटे बजाते हुए फिजा में हल्के से बार-बार बहने का एहसास कराती थीं। उनका मन होता इस मुए को भगा दें यहाँ से कहीं, उनके अंदर के असमंजसों को और बढ़ाता था ये इंसान। 'खुदा हाफिज' वो बोलने को हुईं और परूक गईं। बचपन से ऐसे ही बोलते आई थी, लेकिन इधर लड़कों के कहने

पर 'अल्लाह हाफिज' कहने में आने लगा था। 'अल्लाह' अपने होने का एहसास एक भारीपने से करवाता था। समाज में लोगों को अब 'खुदा' लफ्ज की खुशनुमाई से ज्यादा भारीपना और बयान पसंद आने लगा था, लिहाजा मन मार कर सलवार कमीज के साथ 'अल्लाह हाफिज' भी उनके वजूद में चल निकला था। उन्होंने आवाज में पूरा ठहराव भर 'अल्लाह हाफिज' कहा। मौलवी उस्मान अली को यूँ टरका दिया जाना अच्छा नहीं लगा, वे शिकायत करने लगे 'अए क्या, मुझे लगा चाय पिलवाओगी?' 'ओह!' ...अम्मी का एतराज असरदार था। 'अभी मंडी जाना है, सब्जी खत्म है।' 'अच्छाऽऽ' हवा में मायूसी टाँगने की कोशिश की मौलवी ने, लेकिन अम्मी पे उसका एक हिस्सा भी न खुल पाया। वे मौलवी को अपने ही घर के दरवाजे पर वापसी की राह बता, अंदर घुस चुकी थीं।

ये बाहर का कमरा उनका पक्की सीमेंट का बन गया था और इसके साथ लगा पप्पू का कमरा। उनका सोचना था धीरे-धीरे कर तीन कमरे तो पक्के करवा ही लेंगी। तीन लड़कों को तीन दुल्हनों के वास्ते। नज्जो तो 'इंशाअल्लाह' ससुराल चली जाएगी ही। रही बात उनकी, तो, उनका क्या, बाहर के कमरे के एक कोने में उनका पलंग बिछ जाया करेगा। 'अल्लाह' का शुक्र था, नज्जो के अब्बा के यूँ ही अचानक उठ जाने के बाद के गड़बड़ हालत अब लम्हा-लम्हा सुधर रहे थे।

'नज्जो... नज्जो', उन्होंने पुकारा, नज्जो अम्मी का लाया लाल दुपट्टा सिर पर डाल इठलाने लगी। अम्मी ने झल बलैयाँ चटखीं। इस लड़की के बड़े होने से खतरे बढ़ते जा रहे हैं। उन्होंने तय किया, ढीले से ढीला कुर्ता सिलेंगी और शकीला दर्जन को भी कल कभी जाकर हिदायक दे आएँगी।

मुहल्ले के लड़कों की टोली नज्जों के घर के पास वाले खाली प्लाट में रोज ही धमाल मचाया करती थी। इधर अम्मी ने मना कर दिया था नज्जो को वहाँ जाकर उनके साथ खेलने को, क्योंकि रोज ही वह शक्ल से पिटी हुई वापस आती थी। वर्ना तो नज्जो रोज वहाँ चलते क्रिकेट के खेल में हिस्सेदारी कर दिया करती थी। लड़के उसे दौड़ा-दौड़ा कर फील्डिंग करवाते थे और उसके टेढ़ेमेढ़े आड़े तिरछे दौड़ने पर खूब हँसते थे। वहीं एक दिन उसे अच्युतानन्द गोसाई ने शाट मार कर, बॉल पकड़ने को खूब दौड़ाया था। वहीं सब बेहिसाब हँसते-हँसते गिर पड़े थे और नज्जो अपनी दुर्गत पर घुटनों में सिर रखकर थकान और तौहीन के आँसू रो दी थी। वहीं फिर उसने सिर उठाया था, घुटनों के बीच से, वहीं अच्युतानन्द गोसाई का पहला तआरुफ हुआ था, दो दहकते अनारों के इर्द-गिर्द डसते साँपों से। वह एकाएक सहम गया था, फिर एक

उदास न समझ में आने वाली तर्ज में हल्के, डूबने उतराने लगा था। उसे जोर की रुलाई आने लगी थी। उसका दिल किया, नज्जो के गाल पर चिपके उन अनारों को नोंच कर फेंक दे। वे इतने लाल क्यों थे? उसी दिल किया नज्जो की आँखें ही फोड़ दें, वो इतनी काली क्यों थीं? वो उसे इतनी चोट क्यों पहुँचा रहीं थीं? उसने आँखों बंद कर लीं, और जब उन्हें दोस्तों के हिलाने पर खोला तो देखा नज्जो गायब थी। उसे लगा सामने का दृश्य पूरा खाली हो गया है, कभी न भरने के आतंक सा खाली! उस दिन के बाद से नज्जो नहीं आई उस खाली जगह को भरने। उस जगह का खालीपन अच्युतानन्द के हृदय में कभी न जाने की धमकी सा बैठ गया।

एक साल बड़े होने में बीत गया। अच्युतानन्द की मसें भींज गई। उसकी आवाज फट कर मर्दाना हो गई, उसके कपड़े छोटे हो गए, उसने खाली प्लाट पर क्रिकेट खेलने जाना बंद कर दिया।

अच्युतानन्द को दो सामान्तर ग्रहणों ने एक साथ दबोचा–बाप की असमय मृत्यु ने उसे फल वाली दुकान पर बैठने को मजबूर कर उसकी सारी आवारा आजादी पर अंकुश लगाया और उसके अंदर के निरंतर बढ़ते खालीपन ने उसे कहीं का न छोड़ा। वह ग्रहणग्रस्त हो झँवाता चला गया।

एक दिन दुकान में ऊब बैठा था, जब पार्षद श्री राममोहन उसकी दुकान पर आए और उसके भइया से कहने लगे, 'लड़के को कहाँ उलझा रखा है?' अरे हमारे साथ लगा दो, कुछ पार्टी का काम सिखाएँगे, यहाँ तो पैसे का हिसाब करते करते, ये भरी जवानी में बूढ़ा हो जाएगा।' बड़े भाई को धंधे के सिवाय कुछ खास समझ में आता नहीं था। उसने भावुक अंदाज में हाथ जोड़ कहा, 'ले जाओ साहब आदमी बनाओ इसे, मैं कोई लड़का रख लूँगा अपनी मदद को, पर इसे तो आप अपने साथ रख कुछ बना ही दो...।' पार्षद राममोहन हँसे 'हँ-हँ...''चल बे उठ, आज से ही मेरे साथ चल। ये फल का थैला पकड़।' थैले में पपीते, चीकू एक-दूसरे के घाव सहला रहे थे, अच्युतानन्द को खीज उठ आई, उसे फलों में आदमी और आदमियों में फलों का रूप क्यों नजर आता था? कई बार वो आदमियों को फल समझ काट डालना चाहता था, पहले दाँतों से फिर उनके जिद्दी और कड़े होने पर छुरी से। उसे सारी बातें दिमाग में एक कोहरे के अंदर छटपटाती दिखती थी। बाप के मरने पर कोहरा और घना हो गया था। स्कूल में लगातार दो बार तीन साल तक फेल होने पर उसे निकाल दिया गया था। वैसे भी सत्रह साल का लड़का सातवीं कितनी बार पढ़ता? एक दो साल तो दादागिरी में मजा था, फिर ऊब होने लगी थी। अच्युतानन्द अपने लिए माकूल ठिकानों और

मकसदों की तलाश में यूँ ही बेवजह भटक रहा था कि श्री राममोहन उसके जीवन में अवतारित हो गए थे। उसे वो खास पसंद थे नहीं। मोटे भसन्दर, तरबूजे से गाल। मन होता वहीं चाक लगा कर देखे, अंदर से सुर्ख लाल हैं कि नहीं। आदमी लेकिन वह काम के थे, पैसा रुपया उगाना जानते थे, बेरोजगार लड़कों को काम पर लगाना जानते थे, एवज में उनसे जम के काम लेना जानते थे और कुल मिला-जुला कर लड़कों को आगे बढ़ाते हुए उन्हें मकसद देना जानते थे।

सबसे पहले वे अपने रंगरूटों का खूब बढ़िया भोजन करवाते थे, फिर पीने-पिलाने के तौर-तरीकों की शुरुआत, बियर से होती थी। जब लड़के उनके डेरे पर बैठने के आदी हो जाते थे, तो उसकी विधिवत कोचिंग होती थी। उन्हें धर्म, भारतीय संस्कृति के प्रेरक प्रसंग सुनवाए जाते थे। शहर में यज्ञों का आयोजन, शहर उत्सव समिति में शिरकत और त्यौहार प्रबंधन समिति के कार्यकर्ता तैयार कराए जाते थे। मकसदहीन लड़के बामकसद हो, श्री राममोहन के पूरे मुरीद हो जाते थे। कोचिंग के अंतिम चरण में इधर दो साल से शहर में वीडियो टेप्स और साधुओं के भाषणों में दिमागी शुद्धिकरण का प्रयास ताबड़तोड़ जारी था, उम्मीद थी युवा लड़कों के दिमागों में बात का असर, ज्यादा मारक ढंग से होगा और ये शहर की आबोहवा बदलने में मददगार साबित होगा।

अच्युतानन्द गोसाई का पहला असाईनमेंट था, भारत-पाकिस्तान क्रिकेट मैच में पाकिस्तान की हार के लिए, शहर में यज्ञ का आयोजन। घोषणा हुई, शहर में माइक रख आटो घुमाया गया, सभी खास बजार और स्टेशन पर बैनर लगाए गए। शहर में हल्ला बोला गया। देश में आस्था प्रकट करने की सब शहरवासियों से अपील की गई। पार्टी के सारे युवा कार्यकर्ता बटोरे गए। शहर के ज्यादातर लोग जमा हो गए, सब भारत की जीत के लिए प्रार्थना करने बैठ गए। टी.वी. पर डाइरेक्ट टेलीकास्ट था। सबने देखा 'ॐऽऽ स्वाहा ॐऽऽ स्वाहा ॐऽऽ स्वाहा' के मंत्रोच्चार के बीच अच्युतानन्द गोसाई का चेहरा धधकने लगा। देश के प्रति आस्था की रोशनी जगमग करने लगी। उसकी छाती फूल गई, इतनी कि मुँह पर हाथ रख वो खाँसने लगा। लोगों ने दौड़ कर उसे पानी पिलाया। जब बाद में भारत ने पाकिस्तान पर पाँच विकेट से जीत दर्ज कर ली, तो शहर में अच्युतानन्द गोसाई को कंधे पर बैठा घुमाया गया। खुली जीप में बैठे लड़के भाँगड़ा जैसा कुछ बल्ले-बल्ले करते चले। अच्युतानंद हीरो का दर्जा पा रहा था, शहर वाले देख रहे थे।

राजीव नगर के खाली प्लाट के बगल वाले घर में भी सबने टीवी पर देखा। वो

छोकरा जो बॉल लाने के लिए उस घर में रहने वाली एक लड़की को दौड़ाता था, अब मुहल्ले का अदना क्रिकेट खिलाड़ी नहीं रह गया था, अब वो बॉल के बजाए देश की चिंता करने वाले जवान में तब्दील हो गया था। उस घर में इस समाचार को देखने के बाद, बेचैनी और घुटन के चूल्हों पर उल्टे तवे पर रख रोटी सेंकी गई जो अजीब धुँआए स्वाद से भरी थी। नज्जो का मन किया उस स्वाद को गुसलखाने में कहीं थूक आए और पानी से हरहरा कर बहा दे। उसके अंदर एक रोष का जुगनू कट-कट करने लगा। कुछ भी कहीं भी उस धुँआए स्वाद से बेइज्जत न हो, न तख्त, न कुर्सी न दर, न दीवार, न गुसलखाना। चूल्हों को नए सिरे से धो दिया जाए और दरवाजे कसके बंद कर दिए जाएँ, जो बाहर सड़कों से आते विजय गीतों की ताल को वहीं सड़क छाप बना छोड़ दिया करें। माहुर का रंग गीतों को नशीला बना रहा था और और नज्जो ने अपने बड़े होने के समय में पहली बार किसी ऐसी जिद का इजहार किया, जिसका तर्क अम्मी की अब समझने वाली अक्ल भी न समझ पाई। 'अम्मी... पर्दे लगाओ मोटे-मोटे खिड़कियों पर। बहुत धूप गर्मी और धूल होती है। खास तौर से खाली प्लाट की ओर खुलती खिड़कियाँ ढकनी जरूरी हैं-लूँ चलती है वहाँ से!!!'

अच्युतानन्द गोसाई मंझ रहा था। उसके भीतर तक अंदरूनी अलख जगती जा रही थी, जिसमें कई गुत्थमगुत्था अड़चने थीं। उसमें कई तरह के फल थे, फलों में आदमी थे और आदमियों में फल थे। उसमें कई तरह की गंधें थीं। कई तरह के अस्पष्ट स्मृति दंश थे और इन सबसे बना एक साँवला झुटपुटा था। यह अलक और झुटपुटे का युद्ध था, जिसमें श्री राममोहन की ट्रेनिंग की बदौलत, झुटपुटे के पार जाने की एक आश्वस्त सी ताकत थी। उसके अंदर पहली बार इस अलख का जोर हुआ, कुछ वीडियो रेकार्डिंग्स देख। वह सन्न रह गया। उसके सर्दियाये हाथ, पैर अकड़ कर उसे गठरी बना गए। 'एक पुरानी मस्जिद थी कहीं। कहीं किसी शहर अयोध्या में, जो शायद इसी भारत के किसी कोने का हिस्सा थी। वीडियो में बताया जा रहा था, उस मस्जिद की बुनियाद झूठ पर रची थी।' कमेंटरी चल रही थी और मस्जिद टूट रही थी। 'हमें नीच समझा..., डरपोक समझा, हम पर राज किया...। अब तो इकट्ठे हो जाओ और इस मस्जिद को खत्म करो, वर्ना नपुंसक कहलाओ। यह संदेश दो, हमारी कौम नामर्द नहीं और उन लोगों को कह दो इस देश में रहना है तो यहाँ के बन के रहें।''

अच्युतानन्द ने जैसे ही उन लोगों को यहाँ का बन के रहें सुना, उसकी कनपटियाँ गर्म होने लगीं। उसे कुछ बरस पहले के दहकते अनार किचमिच हो बार-बार नजर आने लगे। उसका ध्यान बार-बार उस खाली प्लाट आर उसके बगल में रहने वालों

पर घूम-घूम पर जाने लगा। वीडियो रिकार्डिंग और उन लोगों में मेल ही क्या था...? फिर भी! उसने अपनी देह की गठरी को खोला और श्री राममोहन के डेरे से बाहर निकल आया। बाहर शाम का झीनापन घिरने को था। एक सतरंगी आभा आसमान में धीमी चाल से पसर गई थी। वो आसमान और सड़क के बीच पतंग और डोर बन गया। वो उड़ कर सड़क नापने लगा, पहले बाजार, फिर स्टेशन, फिर न समझ में आने वाली ललक से राजीव नगर, उसके बाहर, उसके नजदीक का खाली प्लाट और वह खाली जगह। वो जाकर उस खाली जगह के सामने बैठ गया और उसने पाया कि प्लाट के अंतिम छोर पर एक गुलमोहर का पेड़ तेजी से बड़ा हो चुका था और उसमें लाल-लाल फूल भी आने लगे थे। ये उसके यहाँ से कुछ बरस पहले चले जाने के बाद की नई घटना थी। कच्चे पेड़ के लाल फूलों को देख वो रोमांचित हो उठा। उसने उठ कर पेड़ के कई फूलों के गुच्छे तोड़ डाले और वापस लौट उस खाली जगह को उन फूलों से भर दिया, जिस खाली जगह से वो इतने दिनों तक जुड़ा हुआ था और जो उसके अंदर के खालीपन का अंतहीन सबब बनी हुई थीं। फूलों को सामने रख वो पैर जोड़ धूल में बैठ गया और अनजाने रस से भीगते हुए उसने अपनी आँखें बंद कर लीं, इस नाउम्मीद ख्याल से कि अब उसमें कुछ पुराना लौटता हुआ दिखाई पड़ेगा। लेकिन आँखें बंद करने पर उसे काले भुतहा दृश्य दिखाई दिए, जिसमें किसी खौफनाक बाबर की शक्ल थी, एक बेतरतीब ढही हुई मस्जिद थी, हजारों नई ईंटें थी और जिनपे मर्यादा पुरुषोत्तम का न मिटने वाला नाम था, और इन सबके साथ लाखों लोग थे जो उन ईंटों को सिर पर ढोए चले जा रहे थे। खूब सारी चीखों पुकार के बीच एक वाक्य था जो करोड़ों प्रहार के समान दमदार और रसूखवाला था 'एक धक्का और दो'।

अच्युतानन्द गोसाई को कस के गुस्सा चढ़ आया। पिछले तीन चार बरस से जिस दिमागी कोहरे को श्री राममोहन पार्षद साफ करने में लगे थे वो उसकी दिमाग में और गहरा गया था। साँझ रात हो चुकी थी। बाहर कालापन था, भीतर उससे भी ज्यादा कालापन घिर गया। अच्युतानंद अपनी आँखों खोजने में लग गया। खूब ताकत लगा कर आँखें खोलने पर उसे दिखाई दिया एक अदृश्य सा वृत्त, उसके अंदर कैद एक ठोस खाली जगह जिसे आज उसने गुलमोहर के लाल फूलों से भरना चाहा था। लेकिन कोई कमाल नहीं हुआ, कुछ मजा भी नहीं आया। वह तमक कर उठ खड़ा हुआ। फूल टूटने पर जल्द कुम्हलाने लगे थे। उसने अपने जूतों में पैरों की पूरी ताकत भर दी और उन फूलों को और मसल डाला, फिर खाली जगह पर एक किक मारी और ढेर सारी धूल कालेपन के साए में उड़ाता हुआ चल दिया।

अम्मी ठीक समझती रहीं। नज्जो का बढ़ना कोई कहाँ रोक पाया, न अम्मी के ढीले ढाले कुर्ते, न चादर की तहें, न रोजा, नमाज की पाबंदियाँ न घर की छतों दीवारों की महफूज सरहदें। मुहल्ले के बाहर, नज्जो के उर्दू स्कूल के कैम्पस के बाहर नज्जो पर लाइन मारने वालों की लम्बी कतारें हुआ करती थीं। मगर नज्जो समझदार हो गई थी, बहुत समझदार। उसे रोजा, नमाज से लगाव हो गया था, नज्जो के चलन का मुसलमान घरों में कसीदा पढ़ा जाता था, उसे ऐसे घरों से अपनाइयत महसूस होती थी, उसका जी होता था, उसके जी में मचलने वाली हजारों ख्वाहिशों के बावजूद वो अल्लाहवाली बनी रहे और राहें मौजूँ होती रहें। वो अब फ्राक उठा कर नाचने वाली लड़की भी नहीं थी, अब तो वो अपने सभी कपड़ों को सलीके से दबा, मुँह पर, सर पर दुपट्टा बाँध चलती थी। उसकी सहेलियाँ खूब लुत्फ उठाती थीं। घायल मजनू उसे देख और घायल हो जाते थे। एक मजनू तो रोज अपने बालों को पीछे दबाता सा, गाता मिल जाता था 'झलक दिखला जा, एक बार आजा आजा आजा...।' सहेलियाँ हँसती चली जाती थीं, नज्जो को छेड़ती हुई। मस्त और खुशगवार सी बयार उनके शरीरों से हवा में बिखरती जाती थी। उन सभी को बड़े होने में खास मजा आ रहा था।

एक दिन लड़कियों ने फैसला किया, स्कूल से लौट कपड़े बदल बाजार जाएँगी। इस बार टेकरी वाली मस्जिद के पास वाली नव दुर्गा समिति ने खूब बढ़िया मूर्ति बैठाई है। मूर्ति पर खूब सुन्दर कपड़े गहने हैं और साथ में कुछ बिजली से चलने वाली झाँकियाँ भी है। लड़कियाँ शाम को सज धज कर चलीं। बाजार में लड़कियाँ खुश रोशनी हो गईं, और जगमग करने लगीं।

ठसमठस भीड़ के बीच लोगों को कतार में बाँध, पण्डाल की सज्जा और झाँकियाँ दिखाई जा रही थी। लड़कियाँ भी कतार में बँध खिल-खिल कर आगे बढ़ रही थीं। 'चलिए, चलिए, ज्यादा समय मत लगाईए, बढ़ते जाइए... एक जगह भीड़ मत बढ़ाइए।' वॉलन्टीयर लड़के बोले जा रहे थे और लोग आगे बढ़ते जा रहे थे। इन्हीं मिली जुली आवाजों के बीच लोगों के कानों ने सुना एक खाली भारी आवाज को 'प्रसाद भी देते जाओ भाई...।' नज्जो के कानों में भी आवाज के बँटते रेशों को तार-तार अपने तक पहुँचते हुए पाया। उसे आवाज का खालीपन और भारीपन दोनों अखर गया। उसने सिर उठाकर देखा। उसके सिर पर दुपट्टा था, उसका सिर्फ चेहरा दिख रहा था, बदन पर कपड़ों की मजबूत तालेबन्दी थी। आसपास खड़े लोगों ने झलक भर देखा और उस एक झलक में जान गए कि लड़की की उम्र ज्यादा नहीं, फिर भी ज्यादा लगने की तैयारी में थी। उस खाली और भारी आवाज के जिस्म में अच्युतानन्द गोसाई

का साबका हुआ, वह आवाज हुआ, फिर जिस्म हुआ, उसने भी सामने देखा और उसके अंतर की ऐतिहासिक खोज भड़क उठी। इतनी भीड़ के बीच भी उसने बिलकुल साफ आँखों से देखा, उसे फल ही दिखाई दिए। दो दहकते अनार और इर्द गिर्द डसते साँप- कुछ बरस पहले जो उसके जीवन में धमक मचा कर और फिर रूठ कर चले गए थे और जिनके जाने से वहाँ एक खाली जगह बन गई थीं, जो न मालूम क्यों आज तक खाली बनी हुई थी। अच्युतानन्द गोसाई को एक चुप लग गई, उसने लोगों की कतारों को चीरते हुए, भीड़ को नियंत्रित करने वाली रस्सी के उस पार जा कर, उस लड़की के बहुत पास जाकर, अपनी चुप की खोई आवाज में फुसफसा कर कहा 'नज्जो...नज्जो है न तू?'

विभिन्न हलचलों के वातावरण में एक नई हलचल पैदा हो गई। उस हलचल का रंग न काला था न सफेद, उसमें जो शोर था उसकी भाषा को भी ठीक-ठीक खोला नहीं जा सकता। वह मिलीजुली थी, वह कुछ नया बनाने का संकेत करती थी, वह अभी अनगढ़ थी, लिहाजा गीली गीली थी, उस हलचल में पानी की थपकी नहीं शोर था, उससे तरावट नहीं, एक उद्वेलन तारी हो रहा था और शायद इसीलिए लड़कियाँ बेजोड़ ढंग से डर गई। उन्होंने उतावली घबराहट से नज्जो को आगे की ओर धकेल दिया, 'निकल यहाँ से निकल... वे भूतों की भाषा में बुदबुदाईं। गिरते पड़ते, डरी-डराई वे पंडाल से बाहर हो गई। अच्युतानन्द वहीं ठगा, खड़ा रह गया।

लड़कियों ने आपस में ही अच्युतानन्द के यूँ ही अचानक नजदीक चले आने की बात को सीने में दफन कर देने की सौगंध ली, वर्ना उन सभी के घरों से बाहर अकेले निकलना बंद कर दिया जाता। 'कुछ मत बताना यार... वर्ना भाई लोग...।' 'हाँ' नज्जो ने गंभीर हो अपने बड़े भाइयों को याद किया... ...नहीं...नहीं, किसी को नहीं पता चलना चाहिए।' मौलवी उस्मान अली का उसी वक्त बगल की टेकरी वाली मस्जिद से इस घटनाक्रम के उस एक क्षण में तपाक से प्रवेश कर जाना, कुछ जिन्नात के बलबले सा लगा लड़कियों को। मौलवी की मौजूदगी ने उनकी बोलती बंद कर दी। बड़ी मुश्किल से उन्होंने अपनी आवाज कहीं से ढूँढ़ी और कहा 'अस्सलामवलैकुम...।' उनके रहस्यों में मौलवी उस्मान अली की घुसपैठ वक्त का तकाजा बन गई और लड़कियाँ सहम पर झुक कर दुहरी हो गई।

खाली प्लाट के बगल वाले घर में अगले दिन सारी बातों को समझदारी से अपने दिमाग से खारिज करते हुए नज्जो ने सुना, वक्त उसकी खारिज बातों को अपनी झोली में लपक चुका था, और उसे कुछ सजाएँ देने पर उतारू था, क्योंकि उसके जैसी

लड़कियाँ सजा से ही पाक बनी रह सकती थीं। टी.वी. पर एक परिवार का झगड़ा चल रहा था, टी.वी. से भी ज्यादा ऊँची आवाज में पप्पू भाई को बोलना पड़ रहा था, क्योंकि जिद्दी नज्जो कभी टीवी की आवाज कम नहीं करती थी और अम्मी उसे कभी कुछ न कहती थीं। 'अम्मी, मौलवी उस्मान अली बता रहे थे ये लड़कियाँ कल देवी देखने गई थीं। ये कुफ्र है, उस मूर्ति की छाया से लड़कियाँ खराब हो जाएँगी। एकदम नापाक।'

नज्जो बचपन के बाद आज फिर उसी तरह दहल गई जैसे कभी कुछ नई जानकारियों के जीवन में प्रवेश करने से दहल जाया करती थी। अम्मी का जवाब सुनने की उत्कंठा से उसके शरीर में एक सिकुड़न फैल गई। उसके दिमाग ने सारी नमाज परस्ती के बावजूद, मूर्ति की छया और उससे उसके खराब हो जाने के दबाव को छूटते ही नकार दिया, 'क्यों बेजान चीजें किसी को खराब कर सकती हैं?' वो दम साधकर बैठ गई। दम साधने पर बचपन की छुप्पम छुपाई का खेल उसको धड़कनों की आवाज को अपनी मुट्ठी में बंधक बना गया। उसे उस अंदर के सन्नाटे से बहुत दिन बाद रूहानी ताल्लुकात बनाते हुए, जाना पहचाना एहसास हुआ, इतने दिनों के बाद मिलने के अटपटेपन से परे सा। वहीं उसे अम्मी की आवाज रेशा-रेशा कर पास आती सुनाई पड़ी।

'मैं समझा दूँगी, अकेले आना-जाना नहीं करेगी अब।' सन्नाटा कच्ची मिट्टी का घड़ा बन कहीं भीतर टूट गया। वहाँ एक क्रिकेट की गेंद आ कर लगी थी और सब कुछ इतना चुपचाप हुआ था कि मिट्टी समेटने का न तो वक्त रहा था न मौका। अगर सिसकी से कुछ बिखरे टुकड़े समेटे जा सकते थे, तो सिसकी भी अपने पूरेपन के शबाब पर आने से इंकार कर रही थी। जिल्लत, सिर्फ जिल्लत और-और जिल्लत के अलावा उस अच्युतानन्द गोसाई ने नज्जो की जिंदगी को कोई और रंग नहीं दिया था। उसका नज्जो से क्या कहीं कोई रिश्ता था? वो तो उससे इतना दूर था, लेकिन फिर भी उसकी जिंदगी तबाह करने पर तुला था। वो क्यों हर जगह था? वो क्यों खाली प्लाट पर था, टी.वी. पर था, बाजार में था, नव दुर्गा समिति के पंडाल में था? उसकी सहेलियों के बीच, उसकी अम्मी के और उसके बीच, उसके और उसके भाइयों के बीच और यहाँ तक कि मौलवी उस्मान अली और उसके बीच रोड़ा बनता हुआ, उसके अंदर काँटे उगाता हुआ न होने पर भी उसके उसके लोगों से खींच कर दूर करता हुआ। नज्जो की मुट्ठियाँ बँध गई, आवेश से बदन थरथराने लगा। उठ कर उसने घर के बाहर जाने वाला मैरून फूलों वाला पर्दा सरकाया और मुँह में उठ आए जिल्लत के बगूले को हिकारत और नफरत से थूक दिया।

इधर नज्जो के अंदर एक नए शिष्टाचार ने जोरदार दस्तक दी। स्थाई रहनवारी के सिब्जबाग में चंदन के लोबान की मौसिकी थी। नज्जो ने मौसिकी को शब्द दिए और जोर से मन कह उठा 'नफरत-बनाम अच्युतानन्द गोसाई।' वही वह दूसरा था, उससे अलग, जिस दूसरे की हवाओं में गुपचुप बातें हुआ करती थीं। वह भी जानती थीं, कुल एक मस्जिद की कहानी से शुरू हुई थी बातें सब, उसके शहर में। टी.वी. पर तो सब दिखाते थे, कैसे उसके पैदा होने के दो साल बाद कोई मस्जिद थी, जिसे अच्युतानन्द जैसे लोगों ने किसी अयोध्या शहर में गिरा दिया था और उसके गिरने की थरथराहट से उसका ये शहर भी काँपा था इस देश के और बाकी शहरों के साथ, और एक सिलसिला सा बन गया था। उसके पैदा होने के ठीक दो साल बाद जो आज तक बरस दर बरस जारी था, और वो इन्हीं बरसों में बड़ी होती जा रही थी और अब पुख्ता हो रही थी, इस जानकारी के साथ कि नफरत जैसे शिष्टाचार से वाबस्ता होना उसे उसके अपने लोगों के बीच कितना महफूज और अपना बनाता है। छः दिसम्बर को, हर बरस जब से उसने पढ़ना सीखा था, उसने जाना था, उसके शहर की दीवारें कैसे गेरुए अक्षरों से पुती रहती थीं। 'राम लला हम आएँगे, मंदिर वहीं बनाएँगे।' यह जुमला कभी पुराना नहीं होता था, हर बरस यूँ ही नया और ताजा हो दीवारों पर दमक उठता था। उसके अपने घर में भी हर बरस छः दिसम्बर से पहले तैयारियाँ कर ली जाती थीं। घर के पर्दों को खींचकर ताना जाता था, दरवाजों पर ताले जड़ दिए जाते थे। मिट्टी के तेल के कनस्तर भरवा लिए जाते थे और छुरों में धार बढ़ाई जाती थी। अम्मी ऐसे समय में कुछ गम खा जाती थीं। वे किसी बाबर को नहीं जानती थीं। उन्हें अयोध्या की सरहदों और उसके होने के बारे में भी बहुत कम ही पता था। यहाँ इस शहर में बैठे-बैठे क्या फर्क पड़ता था, अगर कहीं कोई मस्जिद बचे या ढहे...? मगर पप्पू, गुड्डू और राजा को फर्क पड़ता था। मौलवी उस्मान अली फर्क पड़वाते थे और इस तरह पूरे मुहल्ले में फर्क एक निहायत जरूरी जज्बे की तरह हवाओं के हाजमें में फूँक दिया जाता था बेहद जिन्दा और पोशीदा तरीके से।

श्री राममोहन के घर पर लकड़ी के सोफे पर ऊँघता पड़ा था, अच्युतानंद गोसाई। शहर के आर्चीज शो रूम में टँगे, गुब्बारे कार्ड्स और गुड्डे-गुड़ियाँ बार-बार उसकी आँखों में कौंध रहे थे। लाल, सफेद, गुलाबी गुब्बारे रूपी दिल। फट-फट कर टूट जाने वाले असली दिल! असली दिल टूट जाने वाले! सभी को फोड़ा था, तोड़ा था, उसने अपने इन्हीं हाथों से, इसी बरस चौदह फरवरी की दोपहर जब, प्रचार हो रहा था, किसी वेलेण्टाइन डे का ये कहते हुए कि यह प्रेम दिवस है और उस दिन खुली छूट

होती है, प्रेम प्रदर्शन की। श्री राममोहन के निर्देश पर अच्युतानन्द अपने छः शागिर्दों के साथ लाठी और चेनों के साथ उस दुकान पर पहुंचा था और इंतिहा मच गयी थी। सारे प्रेम प्रदर्शनों पर खूब मार पड़ी उस दिन। उसने अपने इन्हीं हाथों से गला घोंटा था उस सबका। लेकिन आज लगभग आठ महीने बाद उसे वो गुब्बारे, गुब्बारों को थामे गुड्डे गुड़ियाँ खूब याद आ रहे थे। वो टूटती-फूटती दुकान, वो हाथ में पकड़ दबोचे गए, फटाक की आवाज के साथ टूटते दिल...।

यार लोग अच्युतानन्द गोसाईं उर्फ उनके लिए अच्चू भैया जी के इस गमगीन मिजाज से अपरिचित थे। उन्होंने भइया जी को ठंडी बियर की कई बोतलें खोल कर देनी चाहीं, लेकिन भइया जी ने आँख उठाकर नहीं देखा। भइया जी की बात भी राममोहन को बताई गई तो वो एक आँख शरारत से दबाकर हँसे, लड़कों की सब जरूरतों से वाकिफ ही नहीं रहते थे वे, बल्कि उन जरूरतों की पूर्ति के लिए सचेत भी। ''जाओ, पिक्चर वगैरह दिखाओ इसे, अच्छी शराब पिलाओ, या कुछ इंतजाम करो...।'' इंतजाम का नाम रीना, सायरा या मीना हो सकता था और वो शहर के दूसरे छोर पर स्टेशन के पास वाले मुहल्ले में हो सकता था। शार्गिदों ने भइया जी को कंधे पर उठाया, ठीक इस तरह जिस तरह जश्न जीतने के वक्त उठा कर 'जय हो' करते थे और भइया जी हँस बन, गर्दन सिकोड़-मोड़ अपनी जयकार का अभिवादन स्वीकार करते थे। लेकिन आज भइया जी ने आश्चर्यजनक रूप से अपना बदल ढीला छोड़, गिरा दिया और अजीब लुंजपुंज अंदाज में जीप पर सवार सुख की तलाश में ही लिए।

रीना, सायरा, मीना... की फेहरिस्त लंबी थी। इंतजाम के कई गुणात्मक मूल्य थे, एक चमकती दमकती थाली में परोस कर प्रस्तुत किए गए। भइया जी की देह लू लगी तपिश समान जल रही थी, और भइया जी के मन का सूरज अस्ताचल की ओर विश्राम करने चल पड़ा था। उन्होंने आँख उठाकर भी सामने परोसे नैवेद्यों को नहीं देखा। अब शागिर्दों को चिंता नाम का कीड़ा काटने लगा, वे निराश हो गए। उन्होंने भइया जी को, इतने दिनों बाद उनके घर छोड़ दिया, भइया जी के बड़े भाई और भाभी के पास। भाभी ने अपने छोटे देवर को देख चिंता से इतना ही पूछा 'क्या हुआ अच्चू को?' 'तबियत नासाज है भाभी, कुछ ताप चढ़ आया है। कल हम लोग डाक्टर को यहीं लाकर दिखवा देंगे।' भाभी ने अच्चू की तीमारदारी की, हाथ पैरों में ठंडा तेल मला, सिर सहलाया, लेकिन अच्चू के शरीर में चुस्ती का संचार नहीं कर पाई। अच्चू का मुखड़ा निस्तेज ही बना रहा, पीला, निचुड़ा। भाभी ने अच्चू भैया के शागिर्दों को फोन कर दिया 'लगता है कुछ भूत प्रेत का साया तो नहीं, कुछ ओझा बुला झड़वा दिया जाए। रात भर कुछ' 'नज... नज...' कर बड़बड़ाता रहा।'

'अच्छा...।' शगिर्दों को वह जर्द पीला चेहरा जो नज की रट में और निचुड़ रहा था और कुम्हलाती जाती जान का संबंध अब समझ में आने लगा। उन्हें अच्चू भैया से शिकायत होने लगी 'क्या भइया?' नं. एक बोला

'क्या भइ इया... नं. दो बोला',

'क्या भइया, इशारा किया होता? नं. तीन ने उत्तेजना दर्शाई।'

'भइया वही चाहिए, तो कभी कहते आप। उठाना मुश्किल थोड़े ही था। वैसे भी उन लोगों की लड़कियाँ उठाने का मजा कुछ और है, साले हमारी लड़कियों को आए दिन भगा ले जाते हैं।' अच्युतानन्द गोसाईं के लुंज पुंज पड़ी देह में इसपे आड़ी तिरछी हरकत हुई और आग के शोले उसकी आँखों में सवारी करने लगे। वे तपिश से वैसे ही लाल हुई जा रही थीं, अब जलने लगीं। बोलने वाला शार्गिद सिटपिटा गया, उसने तो अपने ट्रेनिंग के हिस्से पैदा हुई बातों को ही दुहराया था।

अच्युतानन्द गोसाईं के दिमागी कोहरे पर लपटें आवेग से उछलने लगीं थीं। उसमें कई दृश्य यूहीं घुलमिल जाते थे। वो दृश्यों को अलग कर उन्हें उनके अलग वजूदों के साथ स्पर्श करना चाहता था और श्री राममोहन से पूछना चाहता था, 'साहब, इन बार-बार वीडियो में दर्शाये दृश्यों का खाली प्लाट के बगल में रहने वाली लड़की से क्या ताल्लुक?' लेकिन वह कभी नहीं पूछ पाता था, क्योंकि वह उन दृश्यों को कभी छाँट कर आजाद हस्तियों वाला नहीं बना पाता था।

सारे शार्गिदों ने अपने ताजादम तेज दिमागी घोड़े दौड़ाए और उनकी आँखों के आइनों में उनकी शख्सियतों की बची खुची भोलेपन की टिमटिमाहट चमक गई। ''अच्चू भैया का दिल कहीं उस मियाइन में अटक गया था।'' इस बार इस शहर में छः दिसंबर की बरसी अभूतपूर्व ढंग से मनाई जाएगी, और उस मिंयाइन और उसके परिवार वालों और उसके कौमवालों की ऐसी की तैसी की जाएगी। साले, अच्चू भैया को तबाह करने पर तुले हैं। सालों को सबक सिखाने के मकसद से मस्जिद गिराई गई थी, फिर भी नहीं सुधरते, डिस्टर्बेन्स पैदा करते रहते हैं...।

श्री राममोहन पार्षद ने अपनी कार्यकर्ताओं की सभा आयोजित की और एक महीने पहले से ही छह दिसंबर का दिन जोरदार ढंग से मनाने का निर्णय ले लिया गया।

चिंताओं के सरकते दौर में, अम्मी का मन भारी हो, दुखने लगा था। नज्जो की शादी ठहराने का ख्याल दबिश डालता जवान हो रहा था। अम्मी ने मन ही मन अगले

बरस के कुछ दिन तय कर लिए मँगनी और शादी के लिए। नज्जो के लिए पैगामों की कमी नहीं थी। बस अम्मी को ही सब सोच समझ तय करना था। साथ ही शादी की तैयारियाँ करनी थीं। उन्हें लगा एक साथ तो तब कर नहीं पाएँगी, धीरे-धीरे कुछ कपड़े सिलवती चली जाएँगी, कुछ गहने बनवाती जाएँगी, बेटों को कह दिल्ली, मुम्बई से घर के मिक्सी, गैस मँगवाती चली जाएँगी, तो एक बरस काफी होगा और एकदम से पैसों की जरूरत नहीं अखरेगी। 'वे अग्रवाल एण्ड संस' के सेठ से लगभग रोज मिलने लगीं।

प्रोग्राम तय हुआ था पाँच दिसंबर की रात का। श्री राममोहन ने गोपनीय निर्देश दिए थे, ज्यादा नहीं, बस दो चार घर, वही जिनके लौंडे, दूसरी पार्टियों के मंच से झूठे सेक्यूलरिज्म का दावा करते हैं, उन्हें ही ठिकाने लगाना है। साले हर बरस हफ्ते भर पहले से ही हथियार इकट्ठा कर बैठ जाते हैं।

नज्जो के घर कुछ खास तैयारी नहीं थी इस बरस। पप्पू, गुड्डू भाई दोनों ड्यूटी पर थे। शहर के मिजाज में ठंडापन था, शौर्य दिवस अपने पूरे रंगों के बावजूद इस बरस थोड़ा कम चमकदार दिखाई पड़ रहा था। इससे अम्मी के मन में थोड़ी ठंडक पड़ी हुई थी और राजा दो दिन की छुट्टी मनाते हुए बिस्तर पर खूब सोने का मन बना रहा था।

अम्मी 'अग्रवाल एण्ड संस' के सेठ को पैसे देने जाने का मन बनाने लगीं। यह देख नज्जो जिद पर उतर आई, बचपना वही...। अम्मी ने बस आँखों के कोने तिरछे कर निमंत्रण दे दिया। नज्जो वही, वही नज्जो, खुश अपनी अम्मी की परछाईं बन चल पड़ी। दुकान पर भारी भीड़ थी। श्री राममोहन पार्षद के लड़के खड़े थे वहाँ, बता रहे थे सेठ को कि कल दुकान बन्द कर शहर में निकलने वाले जुलूस में शामिल होना होगा। सेठ सारी बातें गौर से सुन, सहमति में सिर हिला रहा था। इस सब के दरम्यान भी सेठ ने अम्मी को देख लिया, अम्मी से उसका बरसों का नाता जो था। वो दुकानदारी पुलक के साथ बोला 'रास्ता खाली करो भाई, आने दो...ग्राहक को आने दो।' लड़के झक सफेद कुर्ते पायजामे पहने हुए थे। कुछ के चमकते ललाटों पर लाल दहकता शृंगार था, त्रिपुण्ड के आकार का। वे खूब मस्त लग रहे थे, नाजे नहाए और तन्दुरुस्त। उन्होंने एक पल ठिठक कर सेठ की बात सुनी और बित्ते भर की जगह खाली कर दी, जिसमें से पहले अम्मी कसम्कस कर जूझीं और अंदर गद्दी की ओर धकिया दी गईं और पीछे से बचपन वाली नज्जो अम्मी की उँगली न छोड़ने की कसम से बँधी, सीधे गद्दी पर ठेल दी गई। अच्चू भैया के किसी नामालूम नाम के भगत के ही स्पर्श से आगे ठेली गई थी नज्जो। नामालूम नाम के भगत ने नज्जो को गौर से देखा, गोया

तय कर रहा हो, सामने ठेली गई चीज, चीज थी या चीज में भरी जान। उसका दिल उछल कर गले में अटक गया, जब उसने देखा चीज में भरी जान, नर्म जान थी और वो वही नर्म जान थी, जिसकी वजह से बिचारे अच्चू भैया को ताप चढ़ आया था।

उधर नज्जो के अंदर एक उबाल सिमसिमाने लगा। उसके सिर से दुपट्टा ढलक कर कंधों पर झूल रहा था। उसे वहाँ मौजूद शक्लों के बीच न जानें क्यों हर शक्ल में नामौजूद अच्युतानन्द गोसाईं की शक्ल दिखने लगी। उसका मन किया अंदर के उबाल को उस ठिगने चकले सफेद कुर्ते पायजामे पर उलट दे, जिसने उसे भीतर ठेला था। अच्युतानन्द ही था, उस शख्स में भी घुसा हुआ कहीं से। अच्युतानन्द के कितने सिर थे।

हिकारत घुट कर कहीं छुप गई जब अग्रवाल एण्ड संस का सेठ पैसे बटोरने के बाद झिलमिल सूट के कपड़े दिखाने लगा। रंग और डिजाइन ने मन से सारा कलषु पोंछ दिया। नज्जो के चेहरे पर रंग और डिजायन टँक गए और इतनी रौनक बढ़ गई कि सेठ के मन में भी एक बार कुछ ममता जैसा उग आया, फिर तुरन्तु उसकी दुकानदारी ने हावी हो अपने सामने बैठे ग्राहकों से ग्राहकों का सा सलूक किया और खाते में अम्मी के नाम के आगे उसने झट लिख डाला–बाकी, रुपए 2,5/-

अम्मी और नज्जो अब 'अग्रवाल एण्ड संस' से बाहर निकले तो शाम का झुरमुट घिर आया था। बाजार अपने दरवाजे बन्द कर सर्दियों में जल्दी घर जाने को बेचैन दिखता था। रामरतन बरतन वाला, दुकान के बाहर रखे ग्लास, डोंगे और जग हड़बड़ाकर समेट रहा था। गुड़िया चूड़ी स्टोर के बाहर लगभग ताला बंद होने की तैयारी थी। अलबत्ता ओ.के. डेली नीड्स और जैन बुक स्टोर पर थोड़ी भीड़ डटी थी। अल्पना सिनेमा के बाहर कुछ कम भीड़ थी, रात के नौ बजे वाले शो में अभी काफी वक्त था, पर चाट पापड़ी वाले अपने घर जाने को मुड़ रहे थे। नौ बजे वाले शो में अब कम ही लोग जाते थे। सर्दी की बारिश का नम आभास हवाओं को और सर्द बना रहा था। कुछ धुँधलाई सी सर्द चुप्पी शहर की सड़कों पर बिछ रही थी। अम्मी के कदम तेज चाल में तब्दील हो रहे थे और नज्जो रुक रुक चल रही थी। उसे रुक रुक कर बचपन के वाकये याद आ रहे थे। उसे याद आया बचपन में इसी तरह वह अम्मी के साथ कई बार अकेली जाया करती थी और किस्से कहानियों की फरमाइश कर अम्मी को तंग कर देती थी, उसका मन किया वापस उसी बचपन में कूद कर प्रवेश कर जाए, अम्मी के संग 'अम्मी, यहीं पर सवार आता था न?। अम्मी सवार की बात सुन डर गई, उन्होंने अपनी चाल धीमी कर नाराजगी से नज्जो की ओर देखा 'अभी ये बात क्यों

उठा रही है? पागल है क्या तू?' नज्जो को अम्मी का अंदाज बेगाना लगा 'क्या बड़ी हो गई अब वह इतनी कि बचपन की बातें दुहराई भी न जा सकें?' उसे याद आया, अम्मी कितने चाव से सुनाती थीं, ऐन इसी सुनसान सड़क पर चलते, किसी पीर की कहानी जो आज भी सर्दियों की रात में घोड़े पर सवार इस सड़क से गुजरते हैं। 'अल्लाह माफ करे,' कई लोगों ने उन्हें रूबरू देखा था यहीं। सवार की कहानी कई सौ सालों से चली आ रही थी और आज भी कई राहगीर दावा करते थे, उन्हें रोक पूछा था सवार ने 'कौन?' 'कौन हो तुम?' 'जाओ, ठीक से जाओ।'

'कौन?' 'कौन हो तुम?' बोलता हुआ एक ठिगना चकला सफेद कुर्ता पायजामा नजदीक आया। नज्जो का दिमाग पलटियाँ खाने लगा, उसे लगा उसके बचपन की कहानी का सवार यहाँ उपस्थित हो कैसे गया। कहानी जिन्दा कैसे हो गई? उसने नीम निगाहों से देखने की कोशिश की, सवार घोड़े पर नहीं, एक बन्द जीप में आया था और उसकी सूरत किसी पीर से नहीं मिलती थी, बल्कि उस गंदली सूरत से मिलती थी जो कुछ देर पहले 'अग्रवाल एण्ड संस' के भीड़ भरे माहौल में दिखाई पड़ा था। उसके हलक में एक काँपती हुई सनसनी फैली जो चीख के बजाए चीख का एहसास भर बन पाई और उसके सीने में दुबककर, कहीं हमेशा के लिए खो गई। उसे लगा उसे चक्कर आ रहा है और उसकी डरी आँखें डर से भागने की बेचैनी में मुँद गईं पूरी की पूरी। अम्मी ने अपने पीछे मुड़ देखा, 'क्या किसी ने उन्हें पुकारा था?' पीछे मुड़कर देखने पर न पुकार थी न आवाज न दृश्य न सच्चाई। उन्हें लगा बच के रहने का फलसफा भी आज उन्हें धोखा देने पर उतारू हो गया है। यह क्या है? उनकी नज्जो कहाँ है, ये किसी और दुनिया की बातें हैं और उन्हें किसी और दुनिया में होना चाहिए। उन्हें लगा ठीक–उन्हें मर जाना चाहिए। इच्छा करते ही मौत मिले...। अम्मी को लगा मिल गई, वो पढ़ने लगी कलमा, 'ला इलाहा इल्ललहा...' जब उनके माथे पर कुछ जोर की चीज टकराई। गिरते–गिरते लेकिन उन्होंने इतना जरूर देख लिया, कि नज्जो को उन लोगों ने उठाकर उस बंद जीप में भर दिया था, और खूब सारा धुआँ और हाहाकार छोड़ती हुई जीप उस नम सर्द हवा के चुप्पी भरे अंधेरों में कहीं विलीन हो गई थी।

'नई दुनिया' लॉज का वाचमैन श्री राममोहन पार्षद के सब लड़कों को पहचानता था। शहर से पच्चीस किलोमीटर दूर था लॉज। लड़कों का अड्डा था वो, और श्री राममोहन का शहर से दूर एक अंतरंग ठिकाना। वहाँ बस दो चार नौकर थे, वो भी पूरे ट्रेन्ड। उनका काम था, लड़कों को आते देख, नजर दूसरी ओर कर लेना, बिना नजरों में आए। कमरे खोल देना। बिस्तरों के चादर, तकियों के गिलाफ बदल देना। बाथरूम

में साफ टावल लटका देना। कमरे में साफ पानी का जग और गिलास रख देना और उसके बाद अपने आप में अपने वजूदों को ले कहीं अदृश्य हो जाना, अगले आदेश आने तक। उसके बाद के रिक्त स्थानों में न उनकी उपस्थिति भरी जाती थी, न उसकी दरकार थी। सब निर्धारित था।

अच्युतानन्द गोसाईं, 'नई दुनिया लॉज' के कमरा नं. 1 में लेटा हुआ था। उसके सामने एक गोल मेज पर एक प्लास्टिक का फूलदार टेबल क्लाथ बिछा हुआ था, जिस पर लाल–लाल फूल खिले हुए थे। मेज के ऊपर विस्की की आधी खाली बोतल और एक अधखाली ग्लास उसके बगल में थोड़ा टेढा सा पड़ा हुआ था। अच्युतानन्द उन्हें बार–बार वहीं लेटे लेटे देख रहा था और सोच रहा था, उसे आजकल विस्की अच्छी क्यों नहीं लगती थी, और पीने पर नशा चढ़ता क्यों न था? वही हल्के–हल्के सुरूर वाला गुनगुना नशा! तभी उसके कमरे में भड़भड़ाते हुए दाखिल हुए दो शर्गिद और उनके हाथों और कंधे के सहारे, एक गिरती–पड़ती छाया, जो उसे अपने ख्यालों में छाई नज्जो की छाया से मिलती जुलती सी लग रही थी। लेकिन कैसे? वह लपक कर उठ कर बैठ गया, तो देखता क्या है, छाया उसके बगल में सर के नीचे तकिया रख लिटा दी गई। उसे जोर का नशा चढ़ने लगा। उसने अपनी नशे सी चढ़ी आँखों को नीचे कर देखा, दहकते अनार वैसे ही थे। उसे लगा छाया में जान थी, धक–धक करती हुई। उसे लगा कैसे? सब उसकी दिमागी करामत है, यह छाया का खेल सब...! वह निराशा में वहशी हँसी हँसने लगा, सब भ्रम था, सारा का सारा! अच्चू भैया को इतने दिनों बाद हँसते देख, शार्गिदों का हौसला बुलंद हो गया और वे गदगद हो बोले ''भइया आपके लिए तोहफा है, कल की तारीख में खोलिएगा इसे। गुडनाइट!''

अच्चू भैया ने बच्चों के भोलेपन सा हाथ पटका पलंग पर और लटपटाए 'साले... बहन... ये सच है कि सपना? कुछ समझ में नहीं आ रहा है?' 'भैया जी, सच है सच, भैया जी कसम से सच, आप ज़रा छू कर तो देखो...।' और इतना बोल शार्गिद कमरे से बाहर हो गए।

उनके जाने के बाद अच्युतानन्द गोसाईं ने अपने दिमागी कोहरे के पास जा, सारी घटना को समझने की कोशिश की। ये यारों ने क्या कर डाला? क्या सचमुच ही? आह! उसने बगल में लिटाई छाया को छू–छू कर तय करना चाहा, ये सच है या सपना? क्या...? सबसे पहले उसने दहकते अनारों की दहक परखने की कोशिश की। उसकी उँगलियों में जुंबिश हुई और अनारों को छूते वक्त उसके हाथ जल गए। उसे झुँझलाहट ने घेर लिया, एक तो हाथ जल गए, दूसरे अनारों के इर्द गिर्द जो साँप

हुआ करते थे, वो दिखाई नहीं पड़े। उसने खोज शुरू कर दी। कस के उँगलियाँ समेट कर उसने छाया की बाँह पर चिकोटी काटी। 'आह...।' एक आवाज कहीं बाहर हो जैसे, वैसी ही धीमी, धुँधली सी, सुनाई पड़ी जो कमरे की दीवारों पर मकड़ी बन चिपक गई। अच्युतानन्द खुश हो गया, उसका सपना बोलता सपना था। वो लंबी दूरियाँ पार कर उस तक पहुँचा था और सच हो गया था।

अम्मी को होश, उस सुनसान रास्ते में चलने वाले राहगीरों ने दिलाया। अम्मी गिरी सड़क पर थीं, उठी तो सड़क के किनारे थीं। उनकी बेबसी शूल पैदा कर रही थी। वो चीखना चाहती थीं। 'हाय मेरी नज्जो...।' पर लड़की जात की इज्जत का सोच वो धीरे-धीरे रो रही थीं। अपने अन्तस को डुबाते, एक ऐसे गड्ढे में, जो नज्जो के अब्बा के गुजर जाने के वक्त उनके अंदर एक बड़ी जगह घेर चुका था, लेकिन वक्त ने जिसे रफ्ता-रफ्ता सुखा दिया था, वह आज फिर बेहयाई से गहराई तक खुद गया था। वह अपने होने के एहसास से अम्मी को झिंझोड़ रहा था, अम्मी की सिसकियों के साथ...। 'क्या हुआ?' 'अरे देखो क्या हुआ?' 'बहन जी क्या हुआ? कौन थे बदमाश, कुछ चुराया क्या?' 'हाँ...हाँ...हाँ, नहीं...नहीं...नहीं।' एक दोपहिए वाले को रोक, राजीव नगर तक पहुँचा दिया गया अम्मी को। अम्मी बदहवास घर की ओर दौड़ीं। राजा बाहर यारों की मंडली जमाए बैठा था। 'नज्जोऽऽऽ' बोल गिर पड़ीं अम्मी। जब तक माजरा समझ में आता, लड़के तैयार हो गए..., हथियारों से लैस। अम्मी बौरा कर चिल्लाने लगी, 'अरे लड़ाई-झगड़े से मेरी नज्जो कैसे मिलेगी, पहले उसे ढूँढ़ो, पुलिस में चलो...!' लड़के बिफरने लगे। तमतमाहट और अपमान से राजा की आँख भींगने लगी, वह गरजा 'सबको खत्म करो...सालों को...!' अम्मी अपने तर्कों के वजन के बावजूद हारने लगीं और मिनमिनाई... 'पुलिस...पुलिस की मदद।' लड़के उन्हें वहीं छोड़ राजीव नगर के घरों में चल दिए, जवानों को अपने अभियान में शामिल करने। तैयारी तो पहले से थी ही। अम्मी मतसुन्न, डगमगाते कदमों से अपने घर के आखिरी दमघोंटू कमरे में चलती चली गईं। वहाँ एक गुलाबी फूल और हरी पत्तियों वाला टिन का बक्शा अभी भी रखा हुआ था, जिसपे चिढ़ने का जिद में नज्जो एक बार गुम हो गई थी। अम्मी नीम अंधेरे में वहीं नज्जो के पैरों के निशान तलाश करने लगीं।

अच्युतानन्द अपने भाग्य से रश्क करता हुआ चीखना चाहता था, उत्तेजित आह्लाद से भर, 'नज्जो तू सचमुच यहाँ है, मेरे इतने पास?' लेकिन वो चीख नहीं पाया। उसे अचानक ही दो काले साँप दिखे जिनकी खोज में वो कुछ देर पहले ही भटक गया था। वे उसके सामने कुंडली मारे बैठे थे उसे डसने को तैयार। हालाँकि वह अभी जीत

के घोड़े पर सवार था, लेकिन फिर भी वह सहम गया, उसने झुक कर अपना मुँह उस चेहरे की ओर किया जो नज्जो की परछाईं का ही चेहरा था, और अब परछाईं से निकल पूरा का पूरा नज्जो का चेहरा बन चुका था। उसके ऐसा करने पर उसे अपने मुँह पर कुछ लिसलिसा सा गंदे एहसास वाला फैलता महसूस हुआ, जो उसके अपने मुँह से उसके अंदर तक जाने को तत्पर था। उसे खराब-खराब लगने लगा। उसने अपनी जेब से रूमाल निकाला और पहले नज्जो का मुँह पोंछा फिर अपना। उसे नज्जो के मुँह से कुछ टूटे-फूटे शब्द निकलते सुनाई पड़े। उसने अपने दिमाग और कानों को उस दिशा में मोड़ा जहाँ से शब्द निकल रहे थे। उसने टूटे-फूटे शब्दों को जोड़ा तो उसे घृणास्पद जज्बों से सने शब्दों के अर्थ समझ में आए। उनमें कुछ विषैले तीर भी थे। उसे आश्चर्य हुआ, इतनी नाजुक लड़की इतना मैल अपने अंदर कैसे रख पाई थी? वह इतनी सारी नई बातें देख उन्हें समझने की कोशिश में थक गया। सुस्ताने की गरज से उसने थोड़ी देर के लिए अपनी स्थिति में परिवर्तन किया। वह पलंग के सामने रखी कुर्सी पर बैठ गया और वहीं से नज्जो के भीतर के रहस्यों को देखने की कोशिश करने लगा। उसके कान में एक घड़ी की टिकटिक सुनाई पड़ी। उसी सुनाई पड़ने के साथ उसे याद हो आए वो वीडियो फिल्म्स के दृश्य जो श्री राममोहन के यहाँ उसे बार-बार दिखलाए गए थे। वो एक टूटी-फूटी सी मस्जिद, उसके आस-पास हजारों कार सेवक, मस्जिद के ऊपर चढ़े लोग, चीखती आवाजें, 'एक धक्का और दो...।' उत्तेजना से उसका पूरा शरीर फड़कने लगा, उसने अपना मोर्चा सँभाला, उसके कानों में वही-वही आवाजों की रेलपेल मच गई। घड़ी की टिकटिक, समय का बदलना, नए दिन का आगाज, नई दुनिया की ईजाद..., के स्वर से स्वर मिला सारी की सारी पृथ्वी थरथराई और अलसुबह शौर्य दिवस का सूरज इस्तकबाल में इठलाता चला आया।

वन्दना राग

युवा लेखिका वंदना राग ने अपने कहानी लेखन की शुरुआत 'हंस' पत्रिका से बहुत पहले की, लेकिन फिर एक लम्बा अन्तराल रहा। वन्दना एक लम्बे अंतराल के बाद दुबारा आईं और कहानी के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण नाम बनकर उभरीं। लगातार कहानियाँ लिखीं, हर महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज कीं। अब पहला कहानी संग्रह 'यूटोपिया' राजकमल प्रकाशन से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। अनुवाद भी करती हैं। संवाद प्रकाश से हाब्समॉस की पुस्तक का अनुवाद 'पूँजी का युग' के नाम से अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है।

यस सर

–अजय नावरिया

'तिवारी, पानी डाल।'

डी.जी.एम. नरोत्तम सरोज की भारी आवाज, बाहर स्टूल पर बैठे रामनारायण तिवारी के पेट में पारे की तरह उतरती चली गई। बाईस साल की नौकरी में ऐसा पहली बार हो रहा था तिवारी के साथ, कि जब भी नरोत्तम आवाज देता तो तिवारी को हाजत-सी महसूस होने लगती। उसने सिर को एक तरफ झटका ताकि वहम दूर हो। पिछले साल से उसे वहम का यह रोग लग गया था। साल भर पहले ही नरोत्तम सरोज तरक्की पाकर ए.जी.एम. से डी.जी.एम. बना था।

'नीच! उम्र का भी कोई लिहाज नहीं करता। मुझसे कुछ नहीं तो बारह साल छोटा होगा। कोटे से बन गया अफसर तो टेढ़ा-टेढ़ा तो चलेगा ही। कोटा नहीं होता तो कहीं झाड़ू लगा रहा होता।' वह भुनभुनाते हुए तेजी से कमरे में घुसा। 'ति' सुनते-सुनते ही उसने यह सब सोच लिया था और 'वारी' तो उसने नरोत्तम के कमरे में दरवाजा खोलकर सुना।

दिल्ली के अक्तूबर की इस सुहावनी ठण्ड में भी तिवारी को गर्मी महसूस हुई थी।

'यस सर।' कह तो गया तिवारी, पर कहते हुए उसकी जैसे जीभ छिल गई। उसे लगता कि कोई उसे गहरे कुएँ में डुबोता जा रहा है। वह खुद को समझाता रहता कि कुछ दिन बाद नरोत्तम का तबादला हो जाएग। रोज सुबह तिवारी को पूजा करने की आदत अपने परिवार से मिली थी, जिसे वह 'संस्कार' मानता था। वह रोज पूजा करते

वक्त नरोत्तम के तबादले की प्रार्थना करता। कभी-कभी तो उसके मन में आता कि वह विष्णुजी से इस राक्षस की मौत माँग ले, पर संस्कार उसे रोकते थे। वह सोचता था कि आखिर इसने मेरा बिगड़ा ही क्या है।

तबादले के लिए तो वह सत्यनारायण की कथा बोल चुका था। हर रोज वह दफ्तर यही सोचते हुए जाता कि आज जब वह दफ्तर पहुँचेगा तो पाएगा कि नरोत्तम जा चुका है। पर उसका यह ख्वाब, हकीकत नहीं हो पा रहा था।

'अब वहीं खड़ा रहेगा, इसमें पानी भर।' नरोत्तम बिना आँख उठाए अपना काम करता रहा। वह कुछ लिख रहा था। इस हुक्म में कोई तल्खी नहीं थी पर तिवारी बुरी तरह आहत हो गया। तिवारी ने कई बार सोचा था कि वह उसके पानी में जहर मिला दे तो... पर बस सोचकर रह गया था। कमबख्त खुद को अंग्रेज की औलाद समझता है। कॉफी और पानी का थर्मस भी अपनी कार में घर से लेकर आता है। कहता है कि यहाँ के पानी का कोई भरोसा नहीं। तिवारी कसमसाया।

'तुमने देखा है कभी आर.ओ. सिस्टम, तिवारी, हमारे यहाँ कई सालों से है।' उस दिन नरोत्तम ने कहा तो तिवारी सुलग गया, उसके अहंकार से। 'अच्छा बता तिवारी, आर.ओ. का क्या मतलब होता है?' नरोत्तम ने फाइल पर लिखना बन्द कर दिया और गाढ़ी नजर से उसकी आँखों में झाँका।

तिवारी को लगा कि इन निगाहों में वह कीड़ा-मकोड़ा बन गया है। 'आर.ओ. मतलब एक तरह का एक्वागार्ड सर।' तिवारी ने सतर्क होकर जवाब दिया। वह दिखा देना चाहता था कि वह कोई मिट्टी का माधो नहीं है।

'बस तुम लोगों में यही कमी है... गधे घोड़े सब बराबर।' नरोत्तम झल्ला पड़ा। 'टूथपेस्ट खरीदने जाओगे तो कहोगे कोलगेट खरीदने जा रहा हूँ और डिटरजेन्ट खरीदो तो कहोगे सर्फ खरीद रहा हूँ। अरे बेवकूफ, एक्वागार्ड तो कम्पनी का नाम है। इसे वाटर प्योरिफायर कहते हैं... पानी साफ करने वाली मशीन और आर.ओ. सिस्टम तो दो अलग चीजें हैं। टी.वी. पर नहीं देखते? इसे ड्रीमगर्ल हेमामालिनी अपनी दोनों बेटियों के साथ बेचने के लिए आती है।' यह कहते हुए नरोत्तम अपनी आदत के विपरीत कुछ मुस्करा गया। यों वह कभी मुस्कराता भी नहीं था।

मुस्करा तो तिवारी भी जाता, पर उसकी छाती में तो नरोत्तम का कहा 'बेवकूफ' शूल की तरह गड़ गया था।

रामनारायण तिवारी ने अपनी जिंदगी के शुरुआती अट्ठारह साल अपने गाँव में